Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVII, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

हजारी प्रसाद द्विवेदी : मानवीय एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण

श्रीमती पूनम सिंह*

* असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी) करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ (उ.प्र.) भारत

प्रस्तावना – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (1907-1979) मूलत: साहित्येतिहास के शोधकर्त्ता एवं आलोचक हैं। उन्होंने उपन्यास, ललित निबंध के साथ ही साथ सम्पादक का भी कार्य किया। आचार्य हजारी प्रसाद की आलोचक दृष्टि उत्कृष्ट कोटि की है। वे बहुआयामी प्रतिभा से सम्पन्न थे। आचार्य द्विवेदी के हिन्दी साहित्य के इतिहास से संबंधित पुस्तकें हैं- 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य : उद्भव एवं विकास' तथा 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल।' हिन्दी साहित्य के इतिहास पर आचार्य शुक्ल के बाद यदि किसी अन्य विद्वान् की मान्यताओं को नतमस्तक होकर स्वीकार किया जाता है तो वे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ही हैं। उन्होंने अपनी शोध दृष्टि से सांस्कृतिक धरोहर को मूल्यवान चेतना प्रदान की। द्विवेदी भारतीय संस्कृति के पोषक हैं। उन्होंने शुक्ल जी की मान्यताओं का खण्डन किया है। शुक्ल जी 'आदिकाल' को 'वीरगाथा काल' कहने के पक्ष में थे जबकि 'आदिकाल' वीर काव्य के साथ धार्मिक एवं श्रृंगार के भी काव्य रचित थे। द्विवेदी जी अपनी शोधक दृष्टि से शुक्ल के 'वीरगाथा काल' कहने वाले ग्रन्थों पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया। शुक्ल जी भक्ति का उदय इस्लाम से मानते थे, द्विवेदी जी इसका भी खण्डन करते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार- 'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया।..... अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान् की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।'

आचार्य शुक्ल 'भक्ति' को इस्लाम से आया हुआ मान लेते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति को न तो इस्लाम से आया हुआ मानते हैं और न ही पराश्रित मनोवृत्ति का ही परिणाम मानते हैं। इनके अनुसार- 'मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बाहर आना वैसा ही होता जैसा आज है।' आचार्य द्विवेदी जी के सार्थक एवं प्रामाणिक शोध का ही परिणाम है कि उन्होंने धार्मिक सम्प्रदाय जैसे- सिद्ध सम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय एवं जैन सम्प्रदाय को प्रतिष्ठापित किया। उन्होंने शोधपरक दृष्टि से सिद्ध किया कि हिन्दी सन्त काव्य पूर्ववर्ती नाथ, सिद्ध साहित्य का सहज विकसित रूप है। सिद्धों और नाथों के भक्ति-भावना को सन्त काव्य में स्पष्ट देखा जा सकता है। सूफी काव्य भी ईरानी साहित्य से प्रभावित न होकर अपितु संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की काव्य परम्पराओं पर आधारित है। संस्कृत हिन्दी की जननी भाषा है। हिन्दी की विकास परम्परा संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश ही है। आचार्य द्विवेदी जी ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भारत की सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा करने का सफल प्रयास किया। उनकी दृष्टि भारतीय संस्कृति के पोषक सिद्धान्त पर है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध उनकी सांस्कृतिक पक्ष को सबसे अधिक बलवती बनाते हैं। उनके निबंध संग्रहों में प्रमुख हैं- अशोक के फूल, कल्पलता, कुटज, विचार और वितर्क, आलोक पर्व, विचार-प्रवाह इत्यादि। आचार्य द्विवेदी का निबंध क्षेत्र बहुत ही व्यापक एवं विस्तृत है। उनका निबंध सांस्कृतिक चिन्तन की गम्भीरता का प्रमाण है। द्विवेदी जी के निबंधों में मानव-कल्याण की भावना सर्वत्र विद्यमान है। द्विवेदी जी सांस्कृतिक निबंधों में भारतीय संस्कृति के व्यापक धरातल को दिखाया गया है। इसमें अतीत की भावभूमि को वर्तमान धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है। द्विवेदी जी को भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि निबंधकार माना जाता है। भारतीय संस्कृति को अभिव्यक्ति देने वालों में आचार्य द्विवेदी का नाम सर्वोपरि है। उनके निबंधों में भारतीय संस्कृति एवं धर्म का विवेचन विपुल मात्रा में किया गया है। द्विवेदी जी संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे किन्तु तब भी उनकी दृष्टि मानव धर्म को पोषित करने वाले सिद्धांतों पर केन्द्रित थी। वे स्पष्ट रूप से व्याख्यायित करते हैं कि- 'सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अन्तर विकास का।' आचार्य द्विवेदी जी के सांस्कृतिक निबंधो में प्रमुख हैं- 'सभ्यता और संस्कृति, संस्कृति और साहित्य, भारतीय संस्कृति की देन, हम सौ वर्ष कैसे जियें, भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या, भारतीय फलित ज्योतिष, हमारी संस्कृति और साहित्य का संबंध, भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत, जीवेम शरद: शतम् प्राचनी भारत की सामाजिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि' इत्यादि हैं। इन निबंधों में भारतीय संस्कृति के सार्थक पक्षों के साथ ही साथ सांस्कृतिक पक्षों को भी वृहद रूप से उजागर किया गया है। मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति हैं। द्विवेदी जी के निबंध संस्कृत साहित्य के गम्भीर एवं चिन्तन पक्ष को प्रकट करते हैं। आचार्य द्विवेदी का मानव विषय पर आधारित दार्शनिक विषयक मन्तव्य दृष्टिगोचर है- 'हमारे दो रूप हैं। एक चिन्मय रूप दूसरा मृण्मय रूप। चिन्मय चैतन्य है, मृण्मय का अर्थ मिट्टी का अर्थात् जड़। जड़ता नीचे की ओर खींचती है। चैतन्य जड़ता के गुरुत्वाकर्षण को नहीं मानता। छोटा सा तृणांकुर धरती के सारे गुरुत्वाकर्षण को अभिभूत करके सिर ऊपर उठाकर खड़ा हो जाता है। नैतिकता चेतना का धर्म है। अनैतिकता उसका अभाव।' द्विवेदी जी नैतिक मूल्यों को चेतना का प्रतीक मानते हैं।

आचार्य द्विवेदी ने मानव धर्म की अवधारणा को विश्व कवि रवीन्द्र से ग्रहण किया है। द्विवेदी जी के मानवतावाद में रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना छिपी हुई है। द्विवेदी जी मानव को देवता से भी ऊँचा स्थान देते हैं। वे कहते हैं कि– 'मनुष्य क्षमा कर सकता है, देवता नहीं कर सकता। मनुष्य हृदय से लाचार है, देवता नियम का कठोर प्रवर्त्तयिता है। मनुष्य नियम से विचलित हो जाता है, पर देवता की कुटिल भृकुटि नियम की निरन्तर रखवाली करती है। मनुष्य इसलिए बड़ा होता है कि वह गलती कर सकता है, देवता इसलिए बड़ा है कि वह नियम का नियन्ता है।' द्विवेदी जी के साहित्य में मानवतावाद सर्वत्र विद्यमान है। वे अपने साहित्य में आधुनिक मानवता के साथ–साथ मध्ययुगीन मानव संस्कृति एवं सभ्यता का सामंजस्य दिखाना चाहते हैं। उनके अनुसार– 'आधुनिक युग के मानवतावाद के साथ मध्य युग के उस मानवतावाद को भुला नहीं देना चाहिए जिसमें किसी न किसी रूप में यह स्वीकार किया गया है कि मानव जन्म दुर्लभ है और भगवान् अपनी सर्वोत्तम लीलाओं का विस्तार नर रूप धारण करके ही करते हैं। नवीन मानवतावाद की सबसे बड़ी बात है, उसकी ऐहिक दृष्टि और मनुष्य के मूल्य और महत्तव की मर्यादा का बोध।' वे मानव धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते थे।'

आचार्य द्विवेदी के साहित्य में भारतीय संस्कृति का जीवन्त चित्रण विद्यमान है। उन्होंने बार–बार उद्घोषित किया है कि 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।' उनका सम्पूर्ण साहित्य मानवतावाद से परिपूर्ण है। वे मनुष्यता विरूद्ध किसी धर्म को नहीं मानते। वह ऐसे ग्रन्थ, रचना को श्रेष्ठ नहीं मानते जो मनुष्य को मनुष्य बनने में बाधक सिद्ध हो। उन्होंने साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का अभियोग किया है। वे कहते हैं कि– 'मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमसुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदु:खकातर और संवेदनशील न बना सके उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।' स्पष्ट है कि द्विवेदी जी ऐसे ही साहित्य को उत्तम मानते हैं जो मनुष्यता का उत्साहवर्द्धक हो। मनुष्य को गलत दिशा देने वाला साहित्य, साहित्य की कोटि में नहीं आता।

द्विवेदी जी अन्यत्र भी कहते हैं– 'वह शास्त्र, वह रसग्रन्थ, वह कला, वह नृत्य, वह राजनीति, वह समाज सुधार और पूजा पार्वण जंजाल मात्र है, जिससे मनुष्यता का भला न होता हो।' द्विवेदी जी ने अपने सांस्कृतिक निबंधों द्वारा नव–निर्माण का संदेश दिया है। वे अंधविश्वास, वाह्याडंबर पर आधारित ढकोसलों को मान्यता नहीं देते। वे ऐसी संस्कृति को महत्त्व देते हैं जो विश्वबन्धुत्व की भावना से प्रेरित हो, जिसमें मानव–कल्याण की भावना निहित हो। सांस्कृतिक पक्ष उनका कहीं भी संकीर्ण मानसिकता से ग्रसित नहीं होता। द्विवेदी सांस्कृतिक पक्ष का विकास ऐतिहासिक पक्ष को भली–भाँति देखकर उसके अन्तर्गत निहित विकास–परम्परा के आधार पर करते हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन–विश्लेषण किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति और परम्पराओं का आधुनिक परिवेश में समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने भौतिकता–आध्यात्मिकता, जड़–चेतन, प्रवृत्ति–निवृत्ति, प्रेम–श्रेय, प्रेम–त्याग का अद्भुत समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत किया। द्विवेदी जी विभिन्न विरोधों एवं विविध मान्यताओं के समन्वय को ही मूलप्रवृत्ति का द्योतक माना है। आचार्य द्विवेदी जी ने स्पष्ट लिखा है– 'मैं संस्कृति को किसी देश विशेष या जाति विशेष की अपनी मौलिकता नहीं मानता। मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक ही सामान्य मानव संस्कृति हो सकती है।' द्विवेदी जी का मानना है कि अगर सभी मनुष्य अभेदता को मिटाकर एक ही संस्कृति को अपना ले तो संसार में भेद–भाव मिट जायेगा। सभी मनुष्य प्रेमपूर्वक रहने लगेंगे, उनमें कोई झगड़ा–लड़ाई नहीं रह जायेगा। द्विवेदी जी भेद–भाव, ईर्ष्या–द्वेष, युद्ध–संघर्ष से रहित होकर व्यवस्थित रूप से एकरूपता में बंधने की प्रक्रिया को सौन्दर्य के अन्तर्गत देखा है। तभी तो वे कहते हैं कि– 'सौन्दर्य सामंजस्य में होता है।'

भारतीय संस्कृति में मानव–प्रेम, प्रकृति प्रेम के साथ मातृभूमि की भावना भी निहित है। भारतीय संस्कृति में कर्म–बल की प्रधानता है। मनुष्य के कर्म में ही फल की आकांक्षा स्थित रहती है। सभी मनुष्यों को अपने कर्म का फल अवश्य मिलता है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा तो बुरे कर्मों का फल बुरा। द्विवेदी जी ने 'भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या' को स्पष्ट करते हुए लिखा है– 'संस्कृति मनुष्य की विविध साधानाओं की सर्वोत्तम परिणति है। धर्म के समान वह भी अविरोधी वस्तु है। वह समस्त दृश्यमान विरोधों में सामंजस्य स्थापित करती है। भारतीय जनता की विविध साधनाओं की सबसे सुन्दर परिणति को ही भारतीय संस्कृति कहा जा सकता है।' द्विवेदी जी की दृष्टि यथार्थ और आदर्श का समन्वय करती है। वह यथार्थ पृष्ठभूमि पर आदर्शवाद के साथ चलते हुए मानव–कल्याण को ही सर्वोपरि मानते हैं। भारतीय संस्कृति की पुरानी परम्पराओं के साथ चलते हुए उसे आधुनिक युग की भाव–भूमि पर प्रतिष्ठित करते हैं। 'प्राचीन संस्कृतियों के आधार पर नवीन मूल्यों का निर्माण करना' द्विवेदी जी की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। उन्होंने अपनी संस्कृतियों एवं परम्पराओं का त्याग कहीं भी नहीं किया। संस्कृतियों एवं परम्पराओं को साथ लेकर ही उन्होंने अपने साहित्य का सृजन किया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण देन मानव–कल्याण की भावना है। वे लिखते हैं कि– 'मनुष्य जितना ही अधिक मनुष्य होता है उतना ही अधिक वह दूसरों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर सकता है और इसके अन्तिम तर्कसंगत परिणाम तक ले जाया जाये तो कह सकते हैं कि एकत्व की अनुभूति ही मनुष्य की चरम मनुष्यता है।' द्विवेदी जी मनुष्य के क्रियाशील व्यक्तित्त्व को महत्तव देते हैं। मनुष्य के सुख–सुविधा का आधार कर्म होता है। यह कर्म जब दूसरे मनुष्य की भलाई में लगाया जाता है तो यह मानसिक संतुष्टि देता है। मनुष्य जन्म लेने का प्रयोजन भी सार्थक सिद्ध हो जाता है। उन्होंने कहा है– 'जीवन को सुन्दर ढंग से बिताने के लिए भी जीवन का एक रूप होना चाहिए। बहुत से लोग कुछ भी न करने को भलापन समझते हैं, यह गलत धारणा है। सुन्दर जीवन क्रियाशील होता है क्योंकि क्रियाशीलता ही जीवन का रूप है। क्रियाशीलता को छोड़कर जीवन का सौन्दर्य टिक नहीं सकता है।' मनुष्य अपने कर्मों के द्वारा ही मनुष्य जीवन को सुन्दर बना सकता है। मनुष्य को कर्म की सही पहचान होनी चाहिए। क्योंकि अच्छे कर्म जहाँ मनुष्य को ऊँचा उठाते हैं वहीं बुरे कर्म उसे अधोपतन की ओर ले जाते हैं। मनुष्यता रूपी कर्म ही मनुष्य को पशुतव एवं जड़त्व से ऊपर उठाती है। द्विवेदी जी ने अपने साहित्य में मनुष्य के नैतिक–अनैतिक गुणों को दिखाकर मानवता को सर्वश्रेष्ठ धर्म स्वीकार किया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में 'भट्टिनी' कहती है– 'एक जाति दूसरी को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है। इससे बढ़कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है भट्ट। तुम्हीं ऐसे हो जो नरलोक से लेकर किन्नरलोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणायित

चित्ता को हृदयंगम करा सकते हो।' द्विवेदी जी इस कथन के द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि भारत देश में मनुष्य को मनुष्यता के रूप में न देखकर उसे उच्च जाति और निम्न जाति में विभाजित कर दिया जाता है। मनुष्य जाति सर्वत्र दूसरे मनुष्यों को नीचा दिखाने में लगे हुए हैं। मनुष्य जाति धर्म, वर्ण, जाति आदि रूपों में विभाजित होकर परस्पर लड़ते-झगड़ते हैं। द्विवेदी जी मनुष्य को धर्म और जातियों में विभाजित न कर उन्हें मनुष्यता के रूप में विभाजित करने के पक्ष में हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी नरदेह को व्यापक एवं विस्तृत मानते हैं वे कहते हैं कि- 'केवल मनुष्य को इच्छा, क्रिया और ज्ञान की त्रिधारा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त है। इसलिए परस्पर पुरुष को भी जब कुछ करना होता है, तब उसे नरदेह धारण करनी पड़ती है। देह तो वह और भी धारण कर सकता है, पर नरदेह में उसका पूर्ण विस्तार होता है।' शरीर तो पशुओं को भी मिलता है। उनमें भी बुद्धि और समझदारी होती है, किन्तु वह विस्तृत एवं व्यापक नहीं होती। मनुष्य ही सम्पूर्ण धरती पर वह प्राणी है जो व्यापकता से फलीभूत होता है। उसका मानसिक स्तर उच्च दर्जे का होता है। वह अपनी बुद्धि के बल पर सम्पूर्ण जगत् में अपना आधिपत्यजमा सकता है। मनुष्य से निकृष्ट प्राणी केवल एक जगह तक ही सीमित होकर रह जाता है। द्विवेदी जी ने बार-बार दुहराया है- 'मनुष्य की जो सबसे सूक्ष्म और सराहनीय साधना है उसी का प्रकाश साहित्य है।' मनुष्य ने बहुत ही अधिक साधना की जिसके फलस्वरूप वह स्वयं को पशुत्व धर्म से बचा पाया। मनुष्य ने कठिन तपस्या के तदन्तर ही संयम एवं परदु:ख कातर जैसी भावनाओं को प्राप्त किया। मनुष्यता की स्थापना से ही साहित्य श्रेष्ठ एवं मूल्यवान बनती है। स्वार्थ की समाप्ति पर ही मनुष्यता का विकास होता है। द्विवेदी जी ने कहा है कि- 'मनुष्य रूपी पुरुष ही अर्थात् पशु-सुलभ धरातल से ऊपर उठा हुआ मनुष्यत्व धर्मी जीव ही सृष्टि की सबसे बड़ी साधना है। उससे बड़ा कुछ भी नहीं- पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गति:।'

अन्तत: कह सकते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य मानवता एवं सांस्कृतिक चेतना की विराट अनुभूति है। उन्होंने प्राचीन परम्पराओं एवं मान्यताओं के आदर्श मूल्यों को आधुनिक परिवेश में उतारने का भरपूर प्रयास किया। उनका आदर्शवाद कोरी कल्पना एवं अंधानुकरण से रहित होकर नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना करता है। वे कहते हैं- 'साहित्य को महान बनाने के मूल में साहित्यकार का महान संकल्प होता है वह संकल्प इस विचार-पद्धति के साथ है।' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी विद्वता को उपन्यास, निबंध, हिन्दी साहित्य ग्रन्थ, आलोचनात्मक ग्रन्थ एवं अनूदित ग्रन्थों के माध्यम से प्रदर्शित किया। उन्होंने कबीर, सूर, कालिदास, रवीन्द्रनाथ आदि कवियों को लेकर अपने आलोचनात्मक विधा को समृद्ध बनाया। उनके प्रिय कवियों कबीर सर्वप्रमुख हैं। कबीर उन्हें इसलिए प्रिय हैं क्योंकि कबीर ने मनुष्यता को सर्वोपरि माना था। मनुष्यता के स्वरूप को उन्होंने रवीन्द्रनाथ के साहित्य से प्राप्त किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य प्रौढ़ता एवं गम्भीरता से पूर्ण होकर सांस्कृतिक धरोहर के अन्तर्गत सर्वत्र मानव-कल्याण की भावना को दर्शाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, संस्करण प्रथम, ग्यारहवीं आवृत्ति, 2009.
2. नन्दकिशोर नवल, हिन्दी आलोचना का विकास, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1981, तीसरी आवृत्ति 2007.
3. डॉ0 रेवतीरमण, हिन्दी आलोचना : बीसवीं शताब्दी, प्रकाशक-अभिव्यक्ति प्रकाशन प्रा0लि0, बी-31 गोविन्दपुर कॉलोनी, इलाहाबाद-211004, संस्करण प्रथम 2002, पुनर्मुद्रण 2011.
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, प्रकाशक-लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, संस्करण 2014.
5. डॉ0 लालसाहब सिंह, हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास, प्रकाशक-विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-221001, संस्करण द्वितीय 2005.

****